ECONSPEAK: A Journal of Advances in Management IT & Social Sciences,
Vol. 15, Issue 7, July 2025 Impact Factor 8.059 ISSN: (2231-4571)
www.skirec.org Email Id: skirec.org@gmail.com

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासों उपन्यासों में दलित चेतना का अध्ययन

डॉ.हेतराम

सहायक आचार्य , अंबिका महाविद्यालय, पल्लू

hetramdeg@gmail.com

1. परिचय –

हिन्दी शब्दकोशों में दलित का जो शाब्दिक अर्थ दिये गये हैं, वे संस्कृत और मराठी के शाब्दिक अर्थों से समानता रखती है। दलित का सामान्य अर्थ है – दला हुआ, खंडित, विदीर्ण, कुचला हुआ, नष्ट किया हुआ।

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में दिया हुआ अर्थ है मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, खण्डित, विनष्ट किया हुआ। डॉ. कालीचरण सनेही के अनुसार भारत में आठ दशक पूर्व से दलित शब्द का प्रयोग आरंभ हुआ है। उनके मत में दलित शब्द दलन का पर्याय है।

दलित शब्द की व्युत्पत्ति मूल रूप से संस्कृत भाषा के दल धातु से हुई है, जिसका अर्थ फटना खंडित होना, द्विधा होना आदि है। मराठी शब्दकोशों में भी दलित शब्द का भिन्न–भिन्न अर्थ दिया हुआ है, जिससे पता चलता है कि मराठी में दलित का सामान्य अर्थ है – विनष्ट किया हुआ। दलित वह है, जिसका जलन हुआ हो। दलित शब्द में ही उसका शाब्दिक अर्थ निहित है। हिन्दी भाषा में दलित शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हो रहा है।

दलित वर्ग – दलित का प्रारंभिक अर्थ जहाँ वैयक्तिक संज्ञा है, वहीं आगे चलकर यह वर्गात्मक संज्ञा बन गयी। डॉ. कुसुमलता मेघवाल[5] ने दलित की परिभाषा करते हुए लिखा है – दलित का शाब्दिक अर्थ है – कुचला हुआ। अतः दलित वर्ग का सामाजिक सन्दर्भों में अर्थ होगा, वह जाति समुदाय जो अन्यायपूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। इसलिए ही दास प्रथा में दास, सामन्तवादी व्यवस्था में किसान, पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर, समाज का दलितवर्ग कहलाता है।

1.2 हिन्दी उपन्यासों में दलित चेतना – आधुनिक काल में वैश्विक स्तर पर हो रही दलित साहित्य की प्रचुरता से चेतना शब्द को अधिकाधिक प्रौढ़ता और व्यापक अर्थ मिल रहे हैं। जीवित रहनेवाले जीवों में चेतना अवश्य रहती है। चूँकि दलितों का विगत जीवन इसका अपवाद रहा। जीवित रहते हुए भी तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने सुप्तावस्था में रहने को उन्हें विवश कर दिया। दलितोत्थान के दौरान दलितों को प्राप्त चेतना के विभिन्न आयामों का चित्रण हिन्दी उपन्यास साहित्य की खूबियों में विशेष स्थान पा रहा है।

1.2.1 दलित चेतना की अवधारणा

चेतना शब्द का संबन्ध "चित्त" से होता है। जिसमें चेतना है वह निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनता है। "चेतना स्वयं को और आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।"[1]

मानवीय चेतना में ज्ञान, भाव और क्रिया का समन्वय रहता है। मानव की सारी क्रियाओं और गतिशील प्रवृत्तियों का निदान होने के कारण चेतना का विकास सामाजिक वातावरण से संबन्ध रखता है। दलित चेतना दलितों का सामूहिक और व्यावहारिक ज्ञान का अहसास है। शरणकुमार लिंबाले के मत में दलित चेतना गुलाम को गुलामी से अवगत करा देती है। अर्थात दलित चेतना से ही दलितों में आत्म पहचान और आत्मचिंतन की प्रवृत्तियाँ जाग उठीं।[2]

अनेकानेक वर्षों से उच्चवर्णों की मानसिक वृत्ति के आधार पर रूपायित और संचालित नियमावली में दलित लोग अपने जीवन को नष्ट कर रहे थे। दलित पहले शोषण की प्रक्रिया से तादात्म्य हो गये थे, तो आगे वे शोषण को पहचानने लगे। वे समझने लगे कि वे शोषण के अधिकारी नहीं हैं। शोषित बनकर नहीं, मानव बनकर जीना उनका धर्म

है। शोषकों के समान वे भी मानवीय अधिकारों के कांक्षी है। बुजुर्गों द्वारा पालित असामाजिक व्यवस्थाओं का खण्डन कर दलित समाज को

मानवीय समुदाय से जोडने का कार्य आधुनिक काल की महान उपलब्धि है, जिसका श्रेय बाबा फुले और डॉ. बी.आर. अंबेडकर को है। इसके समर्थन में डॉ. रमेशकुमार ने कहा है '' डॉ. साहब ने दलित समाज में स्व अस्तित्व, अस्मिता एवं क्रान्ति की आग जलाई जिससे सामाजिक समता और न्याय प्राप्ति के लिए दलितों में आत्मबल प्राप्त हुआ। दलित समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आकांक्षाएँ जागृत होने लगी।''[3]

डॉ. बी.आर. अंबेडकर की वैचारिक मान्यताओं के अनुसार दलितों को पतित बनकर नहीं, मनुज बनकर जीने का दायित्व है। अपने दायित्व निभाने के श्रम में ही दलितों की चेतना प्रवृत्त होने लगी। अपने को मनुज मानना ही दलितों में उभरी सबसे पहली चेतना है, जिसके बाद वे शोषण पहचानकर प्रतिशोध करने लगे। अपनों को और दूसरों को पहचानने का विवेचन और विवेक ने उनको सक्रिय रहने की चेतना प्रदान दी। विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना है '' दलित चेतना स्वतन्त्र भारत की सर्वाधिक उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपलब्धि है। हमारे देश ने अपने इतिहास में वर्ण व्यवस्था का जो घृणास्पद एवं अमानवीय रूप देखा है, वह सिर्फ नाक दबाकर थूकने की चीज है। .....अतीत वर्णाश्रम व्यवस्था का था, लेकिन भविष्य दलित चेतना का है।''[4]

1.3 हिन्दी उपन्यास साहित्य में दलित चेतना

किसी घटना को संवेदात्मक और प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित करने के पक्ष में हिन्दी साहित्यिक विधाओं में उपन्यास साहित्य का विशेष महत्व है। साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी उपन्यास लेखन 19वीं सदी के नवजागरण की सुधारवादी प्रवृत्ति के आधार पर शुरु हुआ, जिसकी धारा अब भी प्रवाहमयी रहती है। मानव जीवन के यथार्थ वर्णन करनेवाले सशक्त माध्यम के रूप में उपन्यास की सार्थकता और रोचकता डॉ. गुलाबराय के शब्दों में इस प्रकार मुखरित है ''उपन्यास कार्य–कारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव–जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।''[5] मानव की सामाजिक प्रतिबद्धता दर्शानेवाले अनगिनत उपन्यास हिन्दी साहित्य में उपलब्ध है, जो भारतीय साहित्य में हिन्दी साहित्य का श्रेय बढाता है।

1.3.1 आरंभिक उपन्यासों में दलित परामर्श –

उपन्यास लेखन के आरंभिक काल में मनोरंजनात्मक, सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये थे। इनमें सामाजिक उपन्यास तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का आकलन प्रस्तुत करने के कारण अधिक प्रभावी रहा। उस समय समाज में छुआछूत, जातिप्रथा और वर्ण वैषम्य जोर से रहें, जिनसे युगीन उपन्यास प्रभावित भी थे। भारतीय नवजागरण के परिलक्ष्य में सामाजिक परिस्थितियों और समस्याओं का वर्णन करते समय तत्कालीन उपन्यासकार, समाज में सबसे निम्न स्तर पर रहनेवाले शोषित, पीडित, दलित, सर्वहारा का चित्रण करना नहीं भूले। आलोचक एवं चिंतक तेजसिंह के शब्दों से पता चलता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में दलित साहित्य धारा के उद्‌भव के पहले ही दलित विमर्श की प्रवृत्ति कायम रही। उनका कथन है " भारतीय नवजागरण के व्यापक प्रभाव तथा तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक–राजनैतिक दबावों के चलते कुछ सवर्ण साहित्यकारों ने दलितों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हुए दलितों की सामाजिक–आर्थिक और धार्मिक समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस तरह हिन्दी उपन्यासों में दलित विमर्श की प्रक्रिया शुरु हुई। दलित विमर्श से युक्त उपन्यास के द्वारा दलितों की जीवन परिस्थिति पाठकों के सामने प्रस्तुत करके, एक हद तक दलितों में नयी चेतना जगाने का श्रम करके दलितेतर लेखक दलित समाज के

मुक्ति–संघर्ष में अपनी भूमिका निभाते रहे।"[6]

19वीं सदी के अंतिम दशक में पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, पं. लज्जाराम मेहत्ता आदि ने अपने उपन्यासों में, धर्म को बनाये रखने के लिए, वर्ण व्यवस्था और छुआछूत का समर्थन करके दलित परामर्श पर नकारात्मक दृष्टि अपनायी है। वे मानते थे कि किसी सवर्ण दृष्ट और पापी का परलोक बिगाडना हो तो उसकी लाश को मेहतर से फिंकवाना चाहिए, क्योंकि तत्कालीन समाज में यह विश्वास दृढ था कि सनातन धर्म के अनुसार किसी सवर्ण को मेहतर छू ले तो उसका धर्म ही नहीं, परलोक भी बिगड जाता है। किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास "*माधवी–माधव या मदन व मोहिनी* में इस अन्धविश्वास का समर्थन मिलता है।"[7]

लज्जाराम मेहत्ता के उपन्यास *आदर्श हिन्दू* (1914) में ऐसा एक प्रसंग मिलता है, जिससे पता चलता है कि उक्त समय के उपन्यासकार ब्राह्मणवादी मान्यताओं के पक्षधर थे, और दलितों को नीच और हेय काम करने को बाह्य करते थे। "यदि आपने उनका पेशा छुडाकर उन्हें उच्चवर्णों में संयुक्त कर लिया तो किसी दिन आपको नाई, धोबी, भंगी और चमार नहीं मिलेंगे। उस समय आपको उन लोगों की जगह लेनी पडेगी। उनके उच्चवर्णों में शामिल हो जाने से हिन्दू समाज अधर्म की गर्त में डूब जाएगा। इसलिए ब्राह्मणों को ब्राह्मण रहने दीजिए।"[8]

उपर्युक्त दोनों प्रसंगों से सामाजिक स्तर पर रही दलितों की पराधीनता और बेबसी निर्धारित की जा सकती है। वर्ण व्यवस्था पर आधृत ब्राह्मणवादी मान्यता से ग्रस्त समाज का हर एक सवर्ण यह मानव कल्याणकारी तत्व भूल गया है कि एक का हित दूसरे के लिए अहित न हो। आगे के उपन्यास में दलित परामर्श को सकारात्मक दृष्टि से देखने–परखने का प्रयास किया गया है। कथा सम्राट प्रेमचन्द ने ही सबसे पहले ऐसा उदात्त कार्य करके दलित समाज को जागृति का सन्देश दिया। इसलिए प्रेमचन्द के नाम पर ही हिन्दी उपन्यास में व्यक्त दलित चेतना के विकास क्रम को निम्न ढंग से रेखांकित किया जा सकता है। जैसे – प्रेमचन्द युगीन, प्रेमचन्दोत्तर युगीन, सत्तरोत्तर और दलित लेखकों के उपन्यास में अभिव्यक्त दलित चेतना।

1.3.2 प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में दलित चेतना

प्रगतिशील साहित्य संघ के अध्यक्ष और प्रवर्ता प्रेमचन्द के आगमन से ही हिन्दी उपन्यास साहित्य में विशेषतः दलितों के जीवनोत्कर्ष में आशावादी और मंगलकारी परिवर्तन आये। प्रेमचन्द युग में भारत में राष्ट्रीय संघर्ष चल रहा था। एक ओर महात्मागाँधी भारतीयों को एकता के सूत्र में पिरोकर अंग्रेजों के विरुद्ध लडने को तैयार कर रहे थे, तो दूसरी ओर स्वयं भारतीय, भारतीयों पर आधिपत्य स्थापित कर रहे थे।

राष्ट्रीय जागरण और युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर, जातिप्रथा, छुआछूत, ब्राह्मणवादी सभ्यता, पूँजीवादी शोषण आदि पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियों से दलितों की मुक्ति चाहनेवाले प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों में प्रेमचन्द ही अग्रणी है। इनके अलावा निराला, उग्र जैसे उपन्यासकारों ने प्रगतिवादी विचारधारा से ओतप्रोत होकर, मानव जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए दलित जीवन की समस्याओं के जरिये दलितों में नवीन चेतना लाने का प्रयास किया है।

उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र माननेवाले प्रेमचन्द के सारे के सारे उपन्यास आदर्शवाद और यथार्थवाद पर आधृत हैं। डॉ. मुन्ना तिवारी के शब्दों में प्रेमचन्द का मानवीय पक्ष इसप्रकार उजागर होता हैं " प्रेमचन्द पहले भारतीय है, जो सवर्णों और अवर्णों के बीच रोटी–बेटी का संबन्ध स्थापित करते हैं।"[9] प्रगतिशील साहित्यकार होने के नाते उन्होंने समाज में होनेवाले अन्याय, अनीति और अत्याचार को लेकर *गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि* आदि उपन्यास लिखे हैं, जिनमें दलित जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ साथ दलित चेतना का प्रादुर्भाव भी देखने को मिलता है। गोदान में होरी एक आदर्श किसान है, जो जमीदारों का शोषण अपनी नियति मानकर सह लेता है और कठिन परिश्रम करके अपनी

जीविका चलाता है। लेकिन, उपन्यास में बीच–बीच आनेवाले, होरी का बेटा गोबर विद्रोही भावना से ओतप्रोत होकर जमीन्दारी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाता है। गोबर के शब्दों से प्रेमचन्द की प्रगतिशील विचारधारा के साथ–साथ निम्नवर्ग में उगी नयी चेतना का परिचय भी मिलता है। होरी के जीवन से लेखक यह समझाना चाहते हैं कि अपढ, गंवार, अंधविश्वासी और धर्म भीरु होने के कारण ही श्रमिक, सर्वहारा, दलित, निम्नवर्ग वर्षों से शोषण का शिकार बनकर मानवीय अधिकारों से वंचित रहता है। अधार्मिकता, ब्राह्मण सभ्यता, जमीन्दारी शोषण व्यवस्था आदि के विरुद्ध लडने का साहस उपन्यास में कहीं कहीं धनिया, गोबर, सलोनी की माँ, हरखू जैसे पात्रों में अभिव्यक्त होता है। उपन्यास के दलित पात्र हरखू की दृष्टि में किसी भी कीमत पर स्त्री की इज्जत की रक्षा करना अनिवार्य है। अपनी बेटी सिलिया की इज्जत, ब्राह्मण मातादीन द्वारा लूट जाने पर हरखू सवर्ण मानसिकता के विरुद्ध अपना द्वेष होरी से प्रकट करता है – '' तुम्हारे घर में भी लडकियाँ हैं होरी महतो, इतना समझ लो। इस तरह गाँव की मरजाद बिगडने लगी तो किसी की आबरू न बचेगी।''[33] सलोनी की इज्जत लूटे मातादीन के मुँह पर हड्डी डालकर चमार हरखू ब्राह्मणी सभ्यता का खण्डन करता है।

दलितों में संगठन और संघर्ष का अवबोध करनेवाला उपन्यास है *कर्मभूमि* इसमें एक ओर गाँधीवादी दृष्टि से प्रभावित प्रेमचन्द के अछूतोद्धार संबन्धी विचार प्रस्तुत है तो दूसरी ओर दलितों की आर्थिक और धार्मिक दमन को चित्रित करके उनके मन्दिर प्रवेश की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। *रंगभूमि* का नायक अंधा और भीखा सूरदास चमार होते हुए भी अपने को क्षीण और पिछडा समझकर सामाजिक क्रान्ति से पीछे नहीं मुडता, जिसके द्वारा प्रेमचन्द ने दलितों के अहिंसात्मक क्रान्ति का प्रतिपादन किया है। कारखाने के लिए अपनी भूमि हडपनेवाले शोषकों के विरुद्ध लडनेवाले शोषितों की मानसिकता सूरदास के शब्दों में मुखरित है – ''मेरा धर्म तो यही है कि जब कोई मेरी चीज पर हाथ बढाये, तो उसका हाथ पकड लूँ। वह लडे तो लडूँ और उस चीज के लिए प्राण तक दे दूँ।''[10] सूरदास के माध्यम से लेखक यह प्रमाणित करता है कि औद्योगीकरण जैसे विकासोन्मुख प्रवृत्तियों से अपने ऊपर पडनेवाली विपत्तियों से लडने के लिए दलित समर्थ हो रहा है।

चर्चित उपन्यासों द्वारा प्रेमचन्द ने दलितवर्ग की समस्याओं का चित्रण करके, दलित पात्रों द्वारा ही उन्हें सुधारने की कोशिश करके, दलित जागरण को ऊर्जा प्रदान की है। इसलिए ही डॉ. एम. विमला के कथन से प्रमाणित होता है कि "प्रेमचन्द साहित्य 19वीं सदी के दलितों के संघर्षमय जीवन का प्रमाण है। दलित चेतना का मूलमंत्र विद्रोह प्रेमचन्द के बाद निराला के उपन्यास में अधिक गूँज उठता है।"[11] युगीन परिवेश से प्रबुद्ध निराला ने अपने उपन्यास में, जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध लडकर, अपनी अस्मिता की खोज करनेवाले दलित पात्रों का चित्रण करके, दलित समाज को प्रगति की ओर उन्मुख किया है। रामविलास शर्मा के शब्दों में

''निराला की विशेषता थी उनसे (निम्नजातियों से) तादात्म्य, उन्हें नीच कहने – समझनेवालों के प्रति आक्रोश, ऊँच–नीच के भेदभाव पर टिकी हुई व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए युवकों का आह्वान।''[12]

1.3.3 दलित लेखकों के उपन्यास में दलित चेतना

हिन्दी के दलित उपन्यासकारों में जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, प्रेम कपाडिया, सत्यप्रकाश, अजय नावरिया आदि प्रमुख हस्ताक्षर हैं। जयप्रकाश कर्दम के *छप्पर* उपन्यास में जमीन्दार द्वारा निम्नवर्ग के सूखा और रमिया पर होनेवाले आर्थिक तथा सामाजिक शोषण और उनके जीवन पथ पर शोषक द्वारा उपस्थित किये जानेवाले अडचन आदि पर सुखा–रमिया के एकमात्र पुत्र, शिक्षित और दलितोद्धार के मूर्ती चन्दन का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रहार का सजीव वर्णन दिया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में चन्दन के पात्र द्वारा, दलित चेतना का उत्तरोत्तर रूप उभर आया हुआ है। शीलबोधि के कहानुसार इस उपन्यास को दलित चेतना की दस्तावेजी रचना के रूप में साहित्य जगत में देखा गया है।

इसके पीछे कारण यह था कि *छप्पर* उपन्यास में दलित आन्दोलन की वर्तमान स्थिति, उसका संघर्ष, उसकी दिशा और दलित आन्दोलन की प्राप्तियों से जुडे उद्देश्यों का समावेश था। दलितों द्वारा दलित जीवन की प्रगति में किये गये संघर्ष ही प्रस्तुत उपन्यास का मर्म मान गया है। इस वास्ते डॉ. एन. सिंह ने *छप्पर* को हिन्दी का पहला दलित उपन्यास माना है।

मोहनदास नैमिशराय के दोनों उपन्यास – *वीरांगना झलकारी बाई* और *मुक्ति पर्व* में दलित चेतना की धधक दिखायी देती है। *वीरांगना झलकारी बाई* में अंग्रेजों की गुलामी से देश को स्वतन्त्र बनाने के सोद्देश्य में अपने जीवन की बली देने को तैयार होनेवाली दलित नारी झलकारी के ऐतिहासिक जीवन घटना द्वारा, देश की रक्षा में दलित समाज के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डाला गया है। सामाजिक प्रतिबद्धता और देशप्रेम की वजह से दलित समाज के एक साधारण कोरी परिवार में जन्मी, *झलकारी* की, संपूर्ण भारत की *वीरांगना झलकारी बाई* बन जाने की कथा की गरिमा और महिमा उपन्यासकार के शब्दों में ही स्पष्ट है ''मुझे उम्मीद है कि इस पुस्तक के माध्यम से दलित और पिछडे समाज के गौरवशाली इतिहास के भीतर छुपी हुई कई महत्वपूर्ण बातें सामने आएँगी।''

सत्यप्रकाश के *'जस तस भाई सवेर'* में चौधरियों द्वारा दलित नारियों पर होनेवाले दैहिक शोषण के दौरान नारीमन का विद्रोह और सवर्ण मानसिकता पर अछूतों की प्रतिक्रिया यथार्थता के धरातल पर प्रतिपादित है। स्वयं लेखक के शब्दों में रचना का सोद्देश्यष्यों प्रकट होता है ''दूषित और दुराग्रही मानसिकता का पर्दाफाश करके साहित्य के माध्यम से समाज के आइने में उन्हें उनका वास्तविक चेहरा दिखाने और मेहनतकशों को अन्याय, शोषण और सामन्तवादी भोगपरक व्यवस्था के विरुद्ध एक जुट होकर अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष हेतु उत्प्रेरित करने के उद्देश्य ने मुझे इस रचना को मूर्त रूप देने के लिए उद्वेलित किया।'' यहाँ गुलामी की झकझोर और अज्ञान की तिमिराहट से हटकर, मुक्ति और ज्ञान रूपी प्रभात की प्रतीक्षा में प्राणार्पण कर रहे निम्नवर्ग का उज्वल रूप पाठक सम्मुख दीप्तमान रहता है। दलितों के सामाजिक न्याय के उपलक्ष्य में प्रेमकपाडिया द्वारा लिखित उपन्यास *'मिट्टी का सौगन्ध'* में, सवर्ण मानसिकता का प्रतिनिधान करनेवाला ठाकुर मदनसिंह और दलित जागृति को प्रतिनिधान करनेवाली शीला के चित्रण द्वारा बुराई पर सच्चाई की विजय की ओर संकेत किया गया है। जयप्रकाश कर्दम की *करुणा,* अजयनावरिया के *उधर के लोग* आदि में भी दलित जागृति स्पंदित दीख पडती है।

दलितोत्थान की दृष्टि में सत्तरोत्तर उपन्यास साहित्य की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि उक्तकाल में दलितेतर के साथ साथ दलित भी उपन्यास साहित्य में अपनी अमिट छाप छोडने लगा। दलितों की दृष्टि में दलित जीवन और दलित चेतना को समाविष्ट करने का सतत प्रयत्न दलितों द्वारा लिखित दलित उपन्यास में दृष्टिगत होता है। डॉ. बी. आर. अंबेडकर के जीवनानुभव से उद्भूत हुआ है कि दलित जीवन में सुधार दलितों द्वारा ही अधिकाधिक संभव होता है। उनके वैचारिक और मौलिक चिन्तन के प्रभाव में आये दलित लेखकों द्वारा सृजित औपन्यासिक रचनाओं में चित्रित दलितों के जीवन की अभियान के संबन्ध में डॉ. एन. सिंह कहते हैं ष्विशेष रूप से स्वयं दलित वर्ग से आये लेखकों ने जो लिखा, उनकी रचनाओं में अथाह पीडा रही, आक्रोश का ज्वार बार–बार उफनता रहा। इसलिए कि वे सामाजिक विषमता के भुक्तभोगी थे। लिखने से पहले भोगा।

दलित मुक्ति की चाह में उनके द्वारा लिखा गया मुक्तिपर्व उपन्यास में दलित समाज की आर्थिक कठिनाईयाँ, सवर्ण द्वारा संचालित पाठशाला में भर्ती होनेवाले दलित छात्रों को झेलनेवाली समस्यायें और दलित जागरण के पडाव के रूप में दलित समाज में शिक्षा के प्रचार–प्रसार की आवश्यकता आदि उपन्यास के पात्र सुनीत द्वारा दर्शायी गयी है। आजादी के बाद, संवैधानिक गतिविधियों के फलस्वरूप दलितों में आयी शैक्षिक प्रगति सुमित्रा के शब्दों में उपन्यासकार ने रेखांकित कर दिया है – ''वे दिन बीत गये जब पढना–पढाना ब्राह्मणों का काम था। अब तुम भी पढा सकते हो

सुनीत।'' प्रस्तुत उपन्यास द्वारा उपन्यासकार कहना चाहते हैं कि आज की दुनिया में दलित पढने और पढाने में समर्थ होकर मुक्तिपर्व मनाने को तैयार हो रहा है।

1.4 निष्कर्ष

दलितों के विगत जीवन पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि चेतना विहीन रहने के कारण ही उनको युग–युगों से हीन जीवन बिताना पड़ा। समयांतर में दलितोत्थान से प्रदत्त वातावरण में दलित जीवन में दिखायी जानेवाली गति–विधियों के मूल में उनका चेतित मन ही प्रवृत्त रहा। जीवन के कटु अनुभवों से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान और शिक्षा से अर्जित प्रायोगिक ज्ञान से मानवीय अधिकारों से अवगत हुए दलित, उनकी माँग में अपनी तूलिका चलाने लगे। साहित्य जगत में उनके पदार्पण से दलित साहित्य धारा का बहुमुखी विकास हुआ तथा साहित्य की विविध विधाओं में सवर्ण मानसिकता के प्रति उनके चेतित मन की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति दर्शित होने लगी। उनकी आकुलताओं और आकांक्षाओं का सम्यक समावेश करके, दलितोत्थान के सुपरिणाम के लिए अनिवार्य भूमिका तैयार करने में हिन्दी उपन्यास साहित्य विधा सक्षम बन रही है। जहाँ आरंभिक उपन्यासों में दलित परामर्श और प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में दलित जीवन का जैसा का तैसा चित्र मिलता था, वहाँ प्रेमचन्दोत्तर और सत्तरोत्तर उपन्यासों में सामाजिक जीवन बिताने में जुझारू रहनेवाले दलितों की जागरूकता दीख पड़ती है। दलित लेखकों द्वारा रचित उपन्यासों में सामाजिक दायित्व निभाने में सतर्क रहनेवाले दलितों की सकारात्मक दृष्टि और समाज सुधार से प्रदत्त सामाजिक प्रतिष्ठा का अंकन मिलता है।

1.5 संदर्भ सूची

1. हिन्दी विश्वकोश – खंड–4 – डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी – पृ. 283
2. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – शरणकुमार लिंबाले – पृ. 44
3. दलित चेतना और समकालीन कहानी – डॉ. रमेशकुमार – पृ. 20
4. कथाक्रम – नवम्बर–2002 – पृ. 34
5. हँस – जनवरी–2001 – पृ. 28
6. माधवी–माधव व मदन मोहिनी – पं. किशोरी लाल गोस्वामी – पृ.
7. आदर्श हिन्दू – भाग–क्ष्क्ष् – लज्जाराम मेहत्ता
8. दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास – डॉ. मुन्ना तिवारी – पृ. 90
9. गोदान – प्रेमचन्द – पृ. 261
10. कुल्ली भाट – निराला – पृ.
11. उपन्यास का पुनर्जन्म – परमानन्द श्रीवास्तव – पृ. 1
12. कदम – जुलाई–अक्तूबर–1998 – पृ. 58